प्रतिक्रमण : जीवन-शुद्धि का उपाय

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.

अध्यात्मयोगी, युगमनीषी आचार्यप्रवर पूज्य श्री हस्तीमल जी म.सा. अपने प्रवचनों में समय-समय पर प्रतिक्रमण एवं व्रत-ग्रहण से जीवन शुद्धि विषयक विचार अभिव्यक्त करते रहते थे। यहाँ पर पूज्य आचार्यप्रवर के प्रवचन-साहित्य से कतिपय विचार जिनवाणी के सह-सम्पादक श्री नौरतन मेहता ने संकलित किए हैं। *-सम्पादक*

- प्रतिक्रमण करने वाले भाई-बहन को चाहिए कि वे अपने जीवन में लगे दोषों का संशोधन करके आत्मा को उज्ज्वल करें। इसीलिए आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान का विधान भगवान् ने श्रावक और साधु सभी के लिए किया है। *-नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं, पृष्ठ ४१८*
- मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभयोग से जो कचरा आया है, उसे चिन्तन द्वारा बाहर निकालना, पीछे हटाना, इसका नाम है 'प्रतिक्रमण'। *-नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं, पृष्ठ ४१९*
- आज के युग की यह विशेषता और विचित्र प्रकृति है कि आदमी भूल करने पर भी अपनी उस भूल अथवा गलती को मानने के लिए तैयार नहीं होता। बहुत से लोग तो दोष स्वीकार करना मानसिक दुर्बलता मानते हैं। शास्त्र कहते हैं कि जो जातिमान्, कुलमान्, ज्ञानवान् और विनयवान् होगा वही अपना दोष स्वीकार करेगा। आध्यात्मिक क्षेत्र में दोषी स्वयं अपने दोष प्रकट कर पश्चात्ताप करता है। जीवन-शुद्धि के लिए यह आवश्यक है कि साधक सूक्ष्म-दृष्टि से प्रतिदिन अपना स्वयं का निरीक्षण करता रहे। नीतिकार ने कहा है कि "प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।" कल्याणार्थी को प्रतिदिन अपने चरित्र का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करना चाहिए। *-नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं, पृष्ठ ४१९*
- प्रतिक्रमण केवल पाटियाँ बोलने से ही पूरा नहीं होता है। यह तो एक साधना है जिससे दोष सरलता से याद आ जावें। इसलिए आचार्यों ने, शास्त्रकारों ने प्रतिक्रमण की पाटियाँ आपके सामने रखी हैं। पाठ तोते की तरह बोल गये, मिच्छा मि दुक्कडं जहाँ आया वहाँ मुँह से कह दिया, लेकिन किस बात का 'मिच्छा मि दुक्कडं' इसका पता नहीं। दैनिक व्यवहार करते यदि झूठ बोला गया, माप-तोल में ऊँचा-नीचा हो गया, किसी से कोई बात मंजूर की, लेकिन बाद में वचन का पालन नहीं किया, कभी चोरी का माल ले लिया, चोरों की मदद की या तस्करी करने में हाथ रहा हो तो उसके लिए अपनी आत्मा से पश्चात्ताप करने का खयाल होना चाहिये। प्रतिक्रमण करने वाले भाई-बहिन जीवन में दोष का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संशोधन करके उसको उज्ज्वल करें। *-नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं, पृष्ठ ४१९*

- जो लोग कहते हैं कि सूत्रों का और प्रतिक्रमण का हिन्दी अनुवाद कर देना चाहिए, उनको समझना चाहिए कि हिन्दी का अनुवाद करके मूल को हटा देंगे तो आपको उन सूत्रों की मूल प्राकृत भाषा का ज्ञान नहीं रहेगा, मूल सूत्र का वाचन बन्द हो जाएगा। इसके अतिरिक्त भाषा में अनुवाद करते समय यह समस्या भी आयेगी कि किस भाषा में अनुवाद किया जाए? भारत में तो राजस्थानी, गुजराती, हिन्दी, बंगला, मराठी, कन्नड़, तमिल, तेलगु, पंजाबी, सिन्धी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाएँ हैं। यदि कोई कहे कि सभी भाषाओं में अनुवाद कर दिया जाय तो भी दिक्कत आयेगी। कल्पना करिए एक ही स्थानक में बैठे विभिन्न भाषा-भाषी लोग अपनी-अपनी भाषा में सामायिक के पाठ बोलेंगे तो कैसी हास्यास्पद स्थिति हो जाएगी। एकरसता भी नहीं रहेगी और सबसे बड़ी बात तो यह है कि मूल पाठों में जो उदात्त और गुरु गंभीर भाव भरे हैं वे अनुवाद में कभी नहीं आ सकते। इसलिए पाठों का मूल भाषा में रहना सर्वथा उचित और लाभकारी है। इसी से हमारी प्राचीन धार्मिक परम्परा और धर्मशास्त्रों की भाषा अविच्छिन्न रह सकती है। साथ ही आज जो सामायिक करते समय या शास्त्र पढ़ते समय हम इस गौरव का अनुभव करते हैं कि वीतराग प्रभु के मुख से निसृत वाणी का पाठ कर रहे हैं, वह भी अक्षुण्ण रह सकता है। *-नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं, पृष्ठ ४१९*
- श्रावक ऐसा कोई कर्म नहीं करेगा, जिससे उसके व्रतों में मलिनता उत्पन्न हो। वह व्रतबाधक व्यवसाय से दूर ही रहेगा और अपने कार्य से दूसरों के सामने सुन्दर आदर्श उपस्थित करेगा। व्रत-ग्रहण करने वाले को अड़ोसी-पड़ौसी चारचक्षु से देखने लगते हैं, अतएव श्रावक ऐसा धंधा न करे जिससे लोकनिन्दा होती हो, शासन का अपवाद या अपयश होता हो और उसके व्रतों में बाधा उपस्थित होती हो। *-आध्यात्मिक आलोक, पृष्ठ ४०२*
- साधु-सन्त कितना ही सुन्दर उपदेश दें, धर्म की महिमा का बखान करें और वीतराग प्रणीत धर्म की उत्कृष्टता का प्रतिपादन करें, मगर जब तक गृहस्थों का एवं उसके अनुयायियों का व्यवहार अच्छा न होगा तब तक सर्वसाधारण को वीतराग धर्म की उत्कृष्टता का खयाल नहीं आ सकता। अतएव अपने आचरण को श्रेष्ठ बनाना भी धर्म प्रभावना का एक अंग है। *-आध्यात्मिक आलोक, पृष्ठ ४०३*
- प्रत्येक गृहस्थ को यह अनुभव करना चाहिए कि वह जिनधर्म का प्रतिनिधि है और उसके व्यवहार से धर्म को मापा जाता है, अतएव ऐसा कोई कार्य उसके द्वारा न हो, जिससे लोगों को उसकी और उसके द्वारा धर्म की आलोचना करने का अवसर प्राप्त हो। *-आध्यात्मिक आलोक, पृष्ठ ४०३*
- चिकित्सक के पास जाकर कोई रोगी यदि उससे बात छिपाता है, अपने रोग को साफ-साफ प्रकट नहीं करता तो वह अपना ही अनिष्ट करता है। इसी प्रकार जो साधक गुरु के निकट अपने दोष को ज्यों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यों प्रकाशित नहीं करता तो वह भी अपनी आत्मा का अनिष्ट करता है। उसकी आत्मा निर्मल नहीं हो पाती। उसे सच्चा साधक नहीं कहा जा सकता। *-आध्यात्मिक आलोक, पृ. ३९८*

- जैसे पैर में काँटा चुभ जाने पर मनुष्य को चैन नहीं पड़ता, वेदना का अनुभव करता है और शीघ्र से शीघ्र उस काँटे को निकाल देना चाहता है। इसी प्रकार व्रत में अतिचार लग जाने पर सच्चा साधक तब तक चैन नहीं लेता जब तक अपने गुरु के समक्ष निवेदन कर प्रायश्चित्त न कर ले। वह अतिचार रूपी शल्य को निकाल कर ही शान्ति पाता है। ऐसा करने वाला साधक ही निर्मल चारित्र का परिपालन कर सकता है। *-आध्यात्मिक आलोक, पृष्ठ ३९८*

- मनुष्य के मन की निर्बलता जब उसे नीचे गिराने लगती है तब व्रत की शक्ति ही उसे बचाने में समर्थ होती है। व्रत अंगीकार नहीं करने वाला किसी भी समय गिर सकता है। उसका जीवन बिना पाल की तलाई जैसा है, किन्तु व्रती का जीवन उज्ज्वल होता है। उसमें एक प्रकार की दृढ़ता आ जाती है, जिससे अपावन विचार उस पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। अतएव किसी पाप या कुकृत्य को न करना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् न करने का व्रत ले लेना भी आवश्यक है।

  -आध्यात्मिक आलोक, पृष्ठ २६९

- गुणवान् और संस्कार सम्पन्न व्यक्ति ही निष्कपट भाव से अपनी आलोचना कर सकता है। जिसके मन में संयमी होने का प्रदर्शन करने की भावना नहीं है, वरन् जो आत्मा के उत्थान के लिए संयम का पालन करता है, वह संयम में आयी हुई मलिनता को क्षणभर भी सहन नहीं करेगा।

  -आध्यात्मिक आलोक, पृष्ठ ३९८

- मन को सर्वथा निर्व्यापार बना लेना संभव नहीं है। उसका कुछ न कुछ व्यापार होता ही रहता है। तन का व्यापार भी चलेगा और वचन के व्यापार का विसर्जन कर देना भी पौषध व्रत के पालन के लिये अनिवार्य नहीं है। ध्यान यह रखना चाहिये कि ये सब व्यापार व्रत के उद्देश्य में बाधक न बन जाएँ। विष भी शोधन कर लेने पर औषध बन जाता है। इसी प्रकार मन, वचन और काया के व्यापार में आध्यात्मिक गुणों का घात करने की जो शक्ति है उसे नष्ट कर दिया जाय तो वह भी अमृत बन सकता है। तेरहवें गुणस्थान में पहुँचे हुए सर्वज्ञ सर्वदर्शी अरिहन्त भगवान् के भी तीनों योग विद्यमान रहते हैं, किन्तु वे उनकी परमात्म दशा में बाधक नहीं होते। इसी प्रकार सामान्य साधक का यौगिक व्यापार यदि चालू रहे, किन्तु वह पापमय न हो तो व्रत की साधना में बाधक नहीं होता। *-नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं, पृष्ठ ४१६*

- राज्य-शासन में तो दोषी के दोष दूसरे कहते हैं, पर धर्म-शासन में दोषी स्वयं अपने दोष गुरु-चरणों में निश्छल भाव से निवेदन कर प्रायश्चित्त से आत्म-शद्धि करता है। धर्मशासन में प्रायश्चित्त को भार नहीं माना जाता। आत्मार्थी शिष्य प्रायश्चित्त के द्वारा आत्मशुद्धि करने वाले गुरु को उपकारी मानता है और सहर्ष प्रायश्चित्त का अनुपालन करता है। *-नमो पुरिसवरगंधहत्थीणं, पृष्ठ ४२३*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- कायोत्सर्ग का सीधा सादा अर्थ होता है- काया का त्याग, किन्तु यह बात नहीं है, यहाँ पर वास्तविक अर्थ है काया के अभिमान का- काया की अनवरत ममता का त्याग। इससे हमारी पाप प्रवृत्ति रुकती है और सच्चे चिरस्थायी चिदानन्द की ओर आत्मा झुकती है। सुख का मूल साधन त्याग है।

  -सामायिक-प्रतिक्रमण सूत्र, पृष्ठ २९

- कायोत्सर्ग खड़े होकर करना चाहिए। दोनों पैरों को पंजों की तरफ से ४ अंगुली के अंतर से और एडी की तरफ ३ अंगुली के अन्तर से रखना चाहिए। दोनों हाथ नीचे की ओर शरीर से संलग्न रखें, ऐसे ही निश्चल होकर १९ दोषों से रहित, किए हुए आगारों के सिवा निश्चेष्ट रह कर कायोत्सर्ग सम्पन्न करना चाहिये। यदि खड़े रहकर न कर सकें तो किसी भी स्थिर आसन से कर सकते हैं।

  -सामायिक-प्रतिक्रमण सूत्र, पृष्ठ ३०

- प्रत्याख्यान का पर्याय गुणधारणा है। इसका अभिप्राय यह है कि कायोत्सर्ग से आत्मा की निर्मलता हो जाने पर शक्ति बढ़ाने के लिये जो नमुक्कारसी आदि त्यागरूप उत्तर गुणों को स्वीकार करना उसी को प्रत्याख्यान कहा जाता है। पच्चक्खाण से आत्मा में कर्मसंचय का हेतु रुक जाता है, उसके रुकने से इच्छा का निरोध होता है। इच्छा-निरोध से सब वस्तुओं की लालसा (तृष्णा) जाती रहती है, फिर जीव शान्तिमय जीवन बिता सकता है। *-सामायिक-प्रतिक्रमण सूत्र, पृष्ठ ३१*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org